माननीय न्यायमूर्ति सुधीर मित्तल के समक्ष,

जुलफकर- याचिकाकर्ता

बनाम

हरियाणा राज्य ,- प्रतिवादी

2020 का सीआरआर नंबर 1125

09 सितम्बर 2020

स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—एस. 167 (2), 173 (2) - याचिकाकर्ता ने सीआरपीसी की धारा 167 (2) के तहत डिफ़ॉल्ट जमानत की मांग की - जांच एजेंसी द्वारा रासायनिक जांच की रिपोर्ट के बिना चालान पेश किया गया - 2018 में एक डिवीजन बेंच ने अभिनिर्धारित किया कि रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट के बिना पेश किया गया चालान था अधूरा और आरोपी डिफॉल्ट जमानत का हकदार था - डिवीजन बेंच द्वारा पारित फैसले को दो सिंगल बेंचों ने पर इंक्यूरियम घोषित किया - एक बड़ी बेंच को रेफर किया गया - इस बीच, याचिकाकर्ता को जमानत पर रिहा करने का निर्देश दिया गया।

अभिनिर्धारित किया गया कि क्या एनडीपीएस अधिनियम 1985 के तहत किसी मामले में, आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 173 (2) के तहत प्रस्तुत चालान, रासायनिक परीक्षक/फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट के बिना प्रस्तुत किया गया एक पूर्ण चालान है। यह वर्तमान मामले में निर्णय लिया जाना है।

(पैरा 1)

इसके अलावा, यह अभिनिर्धारित किया गया कि इस मुद्दे ने इस न्यायालय के साथ-साथ इसके अधीनस्थ न्यायालयों को वर्ष 2018 तक परेशान किया था, जब इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने अजीत सिंह उर्फ जीता बनाम पंजाब राज्य, सीआरएल में 2015 के संशोधन संख्या 4659 में अभिनिर्धारित किया गया कि रासायनिक परीक्षक/फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट के बिना प्रस्तुत किया गया चालान अधूरा चालान था और ऐसे मामले में आरोपी धारा 167 (2) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत डिफ़ॉल्ट जमानत देने का हकदार था।

(पैरा 2)

इसके अलावा, यह अभिनिर्धारित किया गया कि हालांकि, इस न्यायालय की एकल पीठ द्वारा 2019 के आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1731 आकाश कुमार @ सनी बनाम हरियाणा राज्य में पारित दिनांक 16 अक्टूबर 2019 के फैसले में, अजीत सिंह @ जीता (सुप्रा) में डिवीजन बेंच का फैसला पर इन्क्यूरियम घोषित किया गया था। इस फैसले के बाद 20 दिसंबर 2019 को सीआरएम संख्या एम-44412 2019 शंकर बनाम हरियाणा राज्य में पारित एक और एकल पीठ का फैसला आया है।

(पैरा 3)

इसके अलावा, यह अभिनिर्धारित किया गया कि स्टेर डेसिस का सिद्धांत हमारी न्यायिक प्रणाली का आधार रहा है और इसके परिणामस्वरूप निर्णय लेने में एकरूपता और निश्चितता आई है।

(पैरा 5)

इसके अलावा, अभिनिर्धारित किया जाता है कि इस प्रकार, यदि यह क्षेत्र को कवर करने वाली पिछली बाध्यकारी मिसाल को नोटिस करने में विफल रहता है, तो एक निर्णय को प्रति इन्क्यूरियम माना जा सकता है। ऐसी स्थिति में भी कोई छोटी बेंच यह नहीं कह सकती कि बड़ी बेंच का फैसला गलत है। इसके लिए उपलब्ध एकमात्र रास्ता बड़ी बेंच को संदर्भ देना है।

(पैरा 10)

आगे कहा गया, कि मैं अब ऐसी स्थिति का सामना कर रहा हूं जहां मुझे **आकाश कुमार उर्फ सनी** (सुप्रा) और **शंकर** (सुप्रा) में दो एकल पीठ के फैसले और **अजीत सिंह उर्फ जीता** (सुप्रा) में एक बाध्यकारी डिवीजन बेंच के फैसले का सामना करना पड़ रहा है। स्टेयर डेसिस के सिद्धांत के आधार पर, आकाश कुमार उर्फ सनी (सुप्रा) और शंकर (सुप्रा) के मामले में एकल पीठ के फैसले मेरे लिए बाध्यकारी हैं क्योंकि वे कानून का एक प्रस्ताव पेश करते हैं, हालांकि अजीत सिंह उर्फ जीता (सुप्रा) में डिवीजन बेंच द्वारा निर्धारित कानून से भिन्न हैं। हालाँकि, मैं इस आधार पर उपरोक्त एकल पीठ के निर्णयों के साथ अपनी सम्मानजनक असहमति व्यक्त करता हूँ कि एक छोटी पीठ एक बड़ी पीठ के फैसले को स्टेयर डेसिस के सिद्धांत के मद्देनजर पर इंक्यूरियम घोषित नहीं कर सकती थी और यह भी कि पर इंक्यूरियम का सिद्धांत ग़लती से लागू किया गया है। न्यायिक अनुशासन की मांग है कि उपरोक्त एकल पीठ के निर्णयों की वैधता और शुद्धता के संबंध में एक डिवीजन बेंच को एक संदर्भ दिया जाए। अत: इस मामले की फाइल माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष इस अनुरोध के साथ रखी जाए कि इस मामले पर विचार के लिए एक डिवीजन बेंच का गठन किया जाए। चूंकि कानून अस्थिर है और ट्रायल कोर्टों के बीच भ्रम की स्थिति पैदा कर रहा है, इसलिए मामले पर तत्काल विचार किया जा सकता है।

(पैरा 11)

इस बीच, यह निर्देशित किया जाता है कि याचिकाकर्ता को ट्रायल कोर्ट की संतुष्टि के अनुसार जमानत और ज़मानत बांड प्रस्तुत करने पर जमानत पर रिहा किया जाए।

(पैरा 12)

याचिकाकर्ता के वकील अभिलक्ष ग्रोवर।

मुनीष शर्मा, ए.ए.जी., हरियाणा

निर्णय

माननीय न्यायमूर्ति सुधीर मित्तल,

(1) क्या एनडीपीएस अधिनियम 1985 के तहत किसी मामले में, आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 173 (2) के तहत प्रस्तुत चालान, रासायनिक परीक्षक/फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट के बिना प्रस्तुत किए जाने पर पूर्ण चालान है। वर्तमान मामले में निर्णय लिया जाना है।

(2) इस मुद्दे ने इस न्यायालय के साथ-साथ इसके अधीनस्थ न्यायालयों को वर्ष 2018 तक परेशान किया था जब इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने **अजीत सिंह उर्फ जीता बनाम पंजाब राज्य, सीआरएल में। 2015 के संशोधन संख्या 4659** में अभिनिर्धारित किया गया कि रासायनिक परीक्षक/फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट के बिना प्रस्तुत किया गया चालान अधूरा चालान था और ऐसे मामले में आरोपी धारा 167 (2) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत डिफ़ॉल्ट जमानत देने का हकदार था। इस फैसले ने 7 मामलों के एक बैच का फैसला किया और यह 30 नवंबर 2018 का है। इसे इस प्रकार दिए गए संदर्भ पर पारित किया गया था: -

> "1. क्या धारा 173(2) सीआरपीसी के तहत रिपोर्ट प्रस्तुत की गई है? रासायनिक परीक्षक/एफएसएल की रिपोर्ट के बिना पुलिस द्वारा किया गया चालान अधूरा चालान है और एनडीपीएस अधिनियम की धारा 36ए (4) के तहत समय के किसी भी विस्तार के अभाव में, आरोपी सीआरपीसी की धारा 167(2) के तहत जमानत का हकदार है। ?
>
> 2. यदि उत्तर सकारात्मक है, तो आमतौर पर उपयोग किए जाने वाले पदार्थों जैसे अफ़ीम और पोस्त की भूसी आदि के संबंध में क्या स्थिति है, जिन्हें पुलिस अधिकारी दृश्य निरीक्षण, गंध या स्वाद से आसानी से पहचान सकते हैं?

(3) उक्त मामले का निर्णय करते समय, डिवीजन बेंच ने देखा कि वर्ष 2009 से लेकर वर्ष 2016 तक इस न्यायालय की एकल पीठों के परस्पर विरोधी विचार थे, जब 28 जनवरी 2016 को उपरोक्त संदर्भ दिया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि मामला सुलझ गया है जैसा कि इस न्यायालय के बाद के कई एकल पीठ निर्णयों से स्पष्ट है, जिनमें से कुछ **भूपिंदर कुमार @ बिंदर बनाम हरियाणा राज्य**[1], **तरलोक और अन्य बनाम हरियाणा राज्य**[2] और 22 मई 2020 को पारित निर्णय हैं। 2019 के आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1626 में जनता सिंह बनाम हरियाणा राज्य ये एकल पीठ के फैसले दर्शाते हैं कि अजीत सिंह @ जीता (सुप्रा) मामले में डिवीजन बेंच के फैसले का समान रूप से पालन किया जा रहा था। हालाँकि, 16 अक्टूबर 2019 को इस न्यायालय की एकल पीठ द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1731/2019 आकाश कुमार @ सनी बनाम हरियाणा राज्य में पारित फैसले में, अजीत सिंह @ जीता (सुप्रा) में डिवीजन बेंच के फैसले को प्रति इन्क्यूरियम घोषित किया गया था। .यह निर्णय 20 दिसंबर 2019 के सीआरएम संख्या एम-44412 2019 शंकर बनाम हरियाणा राज्य में पारित एक अन्य एकल पीठ के फैसले के बाद लिया गया है।

(4) जाहिर है, जो कानून तय हो चुका था वह आकाश कुमार उर्फ सनी (सुप्रा) और शंकर (सुप्रा) के फैसले के कारण एक बार फिर अस्थिर हो गया है। यह उन दुर्लभ उदाहरणों में से एक होगा जहां उच्च न्यायालय ने कानून को निपटाने के बजाय इसे वापस प्रवाह की स्थिति में डाल दिया है क्योंकि यह अजीत सिंह उर्फ जीता (सुप्रा) के फैसले से पहले मौजूद था। जैसा कि इस मामले के तथ्यों से स्पष्ट है, ट्रायल कोर्ट अपनी धारणाओं के आधार पर अपनी पसंद के फैसले का पालन कर रहे हैं। इस मामले में 25 किलोग्राम की बरामदगी हुई. 50 ग्राम. 28 जून, 2020 को पोस्ता की भूसी बनाई गई, जिसके कारण एफआईआर दर्ज की गई और याचिकाकर्ता की गिरफ्तारी हुई। पुलिस ने 25 अगस्त 2020 को चालान पेश किया, लेकिन फोरेंसिक साइंस लेबोरेटरी की रिपोर्ट पेश नहीं की। 60 दिनों की अवधि 28 अगस्त 2020 को समाप्त हो गई और याचिकाकर्ता ने 31 अगस्त 2020 को आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 167 (2) के तहत एक याचिका दायर की, जिसमें इस आधार पर डिफ़ॉल्ट जमानत देने का दावा किया गया कि 25 अगस्त 2020 को पेश किया गया अधूरा चालान था। आकाश उर्फ सनी (सुप्रा) और शंकर (सुप्रा) पर भरोसा करते हुए और यह देखने के बाद कि एकल पीठ ने अजीत सिंह उर्फ जीता (सुप्रा) में डिवीजन बेंच के फैसले को गलत ठहराया था, याचिका को 01 सितंबर 2020 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया था।

---

[1] 2019 (2) आरसीआर (सीआरएल.) 376

[2] 2019 (3) आरसीआर (सीआरएल) 348

(5) निर्णायक निर्णय का सिद्धांत हमारी न्यायिक प्रणाली का आधार रहा है और इसके परिणामस्वरूप निर्णय लेने में एकरूपता और निश्चितता आई है। **डॉ. शाह फैसल बनाम भारत संघ**[3] में, भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार निर्णय दिया है:-

> "18. मिसाल के सिद्धांत और स्टेर डेसिस हमारी कानूनी प्रणाली के मूल मूल्य हैं। वे ऐसे उपकरण बनाते हैं जो हमारी कानूनी प्रणाली में निश्चितता, स्थिरता और निरंतरता के लक्ष्य को आगे बढ़ाते हैं। तर्कसंगत रूप से, कानून की निश्चितता की अवधारणा के प्रति न्यायाधीशों का कर्तव्य है, इसलिए वे अक्सर कानून के स्थापित सिद्धांतों पर भरोसा करके अपने विचारों को उचित ठहराते हैं।
>
> xxxx xxxx
>
> 23. यह हमें इस सवाल पर लाता है कि क्या एक समन्वय पीठ का फैसला बाद की समन्वय पीठों को बाध्य करता है। अब यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि एक समन्वय पीठ द्वारा दिए गए निर्णय समान या उससे कम शक्ति वाली अगली पीठों पर बाध्यकारी होते हैं। उपरोक्त दृष्टिकोण को नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी, (2017) 16 एससीसी 680 में पुष्ट किया गया है, जिसमें इस न्यायालय ने कहा था कि:
>
> 59.1. संतोष देवी मामले में दो जजों की बेंच को [संतोष देवी बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (2012) 6 एससीसी 421 7] मामले को एक बड़ी बेंच के पास भेजने की सलाह दी जानी चाहिए थी क्योंकि यह जो कहा गया था उससे अलग दृष्टिकोण ले रहा था। सारा वर्मा मामले में [सारा वर्मा बनाम डीटीसी, (2009) 6 एससीसी 121], एक समन्वय पीठ द्वारा दिया गया निर्णय। ऐसा इसलिए है क्योंकि समान ताकत वाली एक समन्वय पीठ किसी अन्य समन्वय पीठ के विचार से विपरीत दृष्टिकोण नहीं अपना सकती है।"

(6) **महादेवलाल कोमाडिया बनाम पश्चिम बंगाल के प्रशासक जनरल**[4] में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है: -

> "हमने कुछ अफसोस के साथ देखा है कि जब देवराजन के मामले में उसी उच्च न्यायालय के दो न्यायाधीशों के पहले के फैसले मनु/डब्लूबी/0044/1954: एआईआर 1954 केल 19 का हवाला

---

[3] 2020 (4) एससीसी 1

[4] 1960 (3) एससीआर 578

उन विद्वान न्यायाधीशों के सामने दिया गया, जिन्होंने वर्तमान अपील पर सुनवाई की, तो उन्होंने इस पर विचार किया। स्वयं यह कहने के लिए कि पिछला निर्णय ग़लत था, पहले के किसी निर्णय से मतभेद होने की स्थिति में सामान्य प्रक्रिया का पालन करने के बजाय, प्रश्न को बड़ी पीठ के पास भेज दिया जाता है। न्यायिक मर्यादा, कानूनी औचित्य से कम नहीं, न्यायिक प्रक्रिया का आधार बनती है। कानून में यदि कोई चीज़ किसी अन्य चीज़ से अधिक आवश्यक है तो वह निश्चितता का गुण है। यदि उच्च न्यायालय में समन्वित क्षेत्राधिकार के न्यायाधीश एक-दूसरे के निर्णयों को खारिज करना शुरू कर दें तो यह गुणवत्ता पूरी तरह से गायब हो जाएगी। यदि किसी उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ किसी अन्य खंडपीठ के पिछले निर्णय को अलग करने में असमर्थ है, और यह विचार रखती है कि पिछला निर्णय गलत है, तो वह स्वयं उस दृष्टिकोण को प्रभावी बनाता है, परिणाम पूरी तरह से भ्रम होगा। स्थिति उतनी ही खराब होगी जहां उच्च न्यायालय में अकेले बैठे एक न्यायाधीश की राय है कि कानून के प्रश्न पर किसी अन्य एकल न्यायाधीश का पिछला निर्णय गलत है और मामले को एक बड़ी पीठ को संदर्भित करने के बजाय उस दृष्टिकोण को प्रभावी बनाता है। ऐसे मामले में वकीलों को यह नहीं पता होगा कि वे अपने ग्राहकों को कैसे सलाह दें और उच्च न्यायालय के अधीनस्थ सभी अदालतें अपने ही उच्च न्यायालय के असहमतिपूर्ण निर्णयों के बीच चयन करने की शर्मनाक स्थिति में आ जाएंगी।''

(7) **अय्यास्वामी गौंडर बनाम मुनुस्वामी गौंडर**[5] में, सुप्रीम कोर्ट ने उपरोक्त प्रस्ताव को दोहराया और अभिनिर्धारित किया कि उच्च न्यायालय का एक एकल न्यायाधीश उसी न्यायालय के एकल न्यायाधीश के पहले के फैसले से सहमत नहीं है, तो उसे इस मामले को एक बड़ी पीठ और औचित्य के पास भेजना चाहिए। और मर्यादा उसके विपरीत दृष्टिकोण अपनाने की गारंटी नहीं देती।

(8) **प्रीतम कौर बनाम सुरजीत सिंह**[6] में हमारे न्यायालय की पूर्ण पीठ ने इस प्रकार निर्णय दिया

"10. यह उजागर करना भी उतना ही आवश्यक है कि आम तौर पर उदाहरणों और विशेष रूप से पूर्ण पीठों की बाध्यकारी प्रकृति हमारी न्यायिक प्रणाली का मुख्य आधार है। यह वह बंधन है जो एक साथ बांधता है अन्यथा व्यक्तिवादी विचारों का समूह बन सकता है जिसके

[5] 1985 (1) एससीआर 808

[6] 1984 पीएलआर 202

परिणामस्वरूप आभासी न्यायिक अराजकता हो सकती है। यह एक स्व-लगाया गया अनुशासन है जो उचित रूप से कानून के अन्य विद्यालयों के लिए ईर्ष्या का विषय है। यहां कानूनी स्थिति स्वयंसिद्ध और अच्छी तरह से तय होने के कारण इस मुद्दे को सिद्धांत रूप में विस्तृत करना अनावश्यक है।''

xxxx xxxx

12. उपरोक्त से, यह एक स्थापित सिद्धांत के रूप में पालन होगा कि पूर्ण पीठ द्वारा विशेष रूप से निर्धारित कानून उस उच्च न्यायालय पर बाध्यकारी है जिसके भीतर इसका प्रतिपादन किया गया है और उसके संबंध में कोई भी और हर छिपा हुआ संदेह उस पर पुनर्विचार को उचित नहीं ठहराता है। एक बड़ी बेंच और इस तरह कानून को नए सिरे से तैयार किया गया। पूर्ण पीठों के अनुपात को निश्चित आधारों पर नियंत्रित किया जाना चाहिए और इन्हें हर तरफ की हवा से उड़ाया नहीं जाना चाहिए। केवल सबसे संकीर्ण दायरे में ही किसी बड़ी पीठ के फैसले पर पुनर्विचार के लिए सवाल उठाया जा सकता है। स्पष्ट कारणों में से एक यह है, जहां यह स्पष्ट रूप से प्रकट है, कि इसके अनुपात को सुपीरियर कोर्ट या उसी कोर्ट की एक बड़ी बेंच के बाद के फैसले द्वारा स्पष्ट रूप से खारिज कर दिया गया है या कम कर दिया गया है। दूसरे, जहां यह निश्चित रूप से अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि एक सह-समान पीठ ने कानून को सीधे तौर पर इसके विपरीत रखा है। और, तीसरा, जहां यह निर्णायक रूप से कहा जा सकता है कि बड़ी बेंच का फैसला स्पष्ट वैधानिक प्रावधान या पहले की बाध्यकारी मिसाल पर ध्यान देने में पूरी तरह विफल होने के कारण दिया गया था। आम तौर पर इन सीमित मापदंडों के भीतर ही एक छोटी बेंच पहले के दृष्टिकोण पर पुनर्विचार का सुझाव दे सकती है, अन्यथा नहीं। हालाँकि, इन मामलों में न तो हठधर्मिता और न ही संपूर्ण होना सबसे अच्छा है, फिर भी उपरोक्त श्रेणियां स्वीकार्य रूप से अच्छी तरह से स्वीकार्य हैं जिनमें पुनर्विचार के लिए एक अन्यथा बाध्यकारी मिसाल का सुझाव दिया जा सकता है।

(9) इस स्तर पर पर इंक्यूरियम के नियम का भी उल्लेख किया जा सकता है। डॉ. शाह फैसल (सुप्रा) मामले में सुप्रीम कोर्ट ने इस पर निम्नानुसार राय दी है:-

“28. पर इंक्यूरियम का नियम न्यायिक मिसाल के सिद्धांत के अपवाद के रूप में विकसित किया गया है। शाब्दिक रूप से, इसका मतलब प्रासंगिक क़ानून या किसी अन्य बाध्यकारी प्राधिकारी की अनदेखी में पारित निर्णय है [देखें यंग बनाम ब्रिस्टल एयरप्लेन कंपनी लिमिटेड, 1944

केबी718 (सीए)]। उपरोक्त नियम को इंग्लैंड के हैल्सबरी के कानूनों में निम्नलिखित तरीके से अच्छी तरह से स्पष्ट किया गया है:

1687... यदि पर इन्क्यूरियम दिया गया है तो अदालत अपने स्वयं के निर्णय का पालन करने के लिए बाध्य नहीं है। पर इंक्यूरियम में एक निर्णय तब दिया जाता है जब अदालत ने अपने या किसी समन्वित क्षेत्राधिकार की अदालत के पिछले फैसले की अनदेखी में काम किया हो, जिसने उसके पहले मामले को कवर किया हो, या जब उसने हाउस ऑफ लॉर्ड्स के किसी फैसले की अनदेखी में काम किया हो। पहले मामले में उसे यह तय करना होगा कि किस निर्णय का पालन करना है, और बाद में यह हाउस ऑफ लॉर्ड्स के निर्णय से बाध्य है।

(10) इस प्रकार, यदि यह क्षेत्र को कवर करने वाली पिछली बाध्यकारी मिसाल को नोटिस करने में विफल रहता है, तो एक निर्णय को पर इन्क्यूरियम अभिनिर्धारित किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में भी कोई छोटी बेंच यह नहीं कह सकती कि बड़ी बेंच का फैसला गलत है। इसके लिए उपलब्ध एकमात्र रास्ता बड़ी बेंच को संदर्भ देना है। मैं अब एक ऐसी स्थिति का सामना कर रहा हूं जहां मुझे आकाश कुमार उर्फ सनी (सुप्रा) और शंकर (सुप्रा) में दो एकल पीठ के फैसले और अजीत सिंह उर्फ जीता (सुप्रा) में एक बाध्यकारी डिवीजन बेंच के फैसले का सामना करना पड़ रहा है। स्टेर डेसिस लेने के सिद्धांत के आधार पर, आकाश कुमार उर्फ सनी (सुप्रा) और शंकर (सुप्रा) के मामले में एकल पीठ के फैसले मेरे लिए बाध्यकारी हैं क्योंकि वे कानून का एक प्रस्ताव पेश करते हैं, हालांकि डिवीजन बेंच द्वारा निर्धारित कानून से भिन्न हैं। हालाँकि, मैं इस आधार पर उपरोक्त एकल पीठ के निर्णयों के साथ अपनी सम्मानजनक असहमति व्यक्त करता हूँ कि एक छोटी पीठ एक बड़ी पीठ के फैसले को स्टेर डेसिस के सिद्धांत के मद्देनजर पर इंक्यूरियम घोषित नहीं कर सकती थी और यह भी कि प्रति इंक्यूरियम का सिद्धांत ग़लती से लागू किया गया है. न्यायिक अनुशासन की मांग है कि उपरोक्त एकल पीठ के निर्णयों की वैधता और शुद्धता के संबंध में एक डिवीजन बेंच को एक संदर्भ दिया जाए। अत: इस मामले की फाइल माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष इस अनुरोध के साथ रखी जाए कि इस मामले पर विचार के लिए एक डिवीजन बेंच का गठन किया जाए। चूंकि कानून अस्थिर है और ट्रायल कोर्टों के बीच भ्रम की स्थिति पैदा कर रहा है, इसलिए मामले पर तत्काल विचार किया जा सकता है।

(11) इस बीच, यह निर्देशित किया जाता है कि याचिकाकर्ता को ट्रायल कोर्ट की संतुष्टि के लिए जमानत और ज़मानत बांड प्रस्तुत करने पर जमानत पर रिहा किया जाए।

(12) इस आदेश की एक प्रति पंजाब, हरियाणा राज्यों और यू.टी. चंडीगढ़ के सभी जिला और सत्र न्यायाधीशों को उनकी जानकारी के लिए भेजी जाए।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

हार्दिक सचदेवा

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी

पोस्टिंग का स्थान: भिवानी